श्रीमती सुगनी

बनाम

रामेश्वर दास एवं अन्य

सिविल अपील संख्या 3465/2000

निर्णय 25 अप्रेल,2006

(न्यायाधिपति अरिजीत पसायत और न्यायाधिपति तरूण चटर्जी जे.जे.)

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963, धारा 16(सी)

अनुबंध का विशिष्ट निष्पादन-डिक्री के लिए आयोजित, राहत चाहने वाले व्यक्ति को वाद में प्रतिवाद करना और साक्ष्य द्वारा स्थापित करना अनिवार्य है कि वह हमेशा अनुबन्ध को निभाने के लिए तैयार और इच्छुक रहा है।

सिविल प्रक्रिया संहिता,1908

धारा 100, दूसरी अपील-उच्च न्यायालय के अधीन शक्ति प्रकरण में अपीलार्थी और प्रतिवादी संख्या एक के बीच वाद की सम्पत्ति को 7,000/- रूपये में दिनांक 13.12.1975 को समझौता निष्पादित किया गया था और उक्त राशि में से 5,000/-रूपये का भुगतान किया गया था तथा शेष राशि बैयनामा की तारीख को देना तय हुआ था। विक्रय विलेख का पजीकरण नहीं किया जा सका, क्योंकि प्रासंगिक समय पर शहरी सम्पत्ति की बिक्री

पर प्रतिबंध था। प्रतिवादी नंबर 1 महादेव ने कथित तौर पर दिनांक 13.12.1975 को बेचने के समझौते के आधार पर उत्तरदाताओं 1 और 2 (मुकदमे में प्रतिवादी नंबर 2 और 3) के पक्ष में 6,000/- रुपये की बिक्री विलेख निष्पादित किया। 3.7.1978 को प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा अपीलकर्ता से बकाया किराए की मांग करते हुए एक नोटिस भेजा गया था। 3.1.1979 को अपीलकर्ता ने दिनांक 13.12.1975 के समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा दायर किया।

वह विक्रय पत्र निष्पादित कराने के लिए पूरी तरह तैयार और इच्छुक थी।

उत्तरदाताओं ने तर्क दिया कि प्रतिवादी संख्या एक ने दिनांक 13.12.1975 को मुकदमे की सम्पत्ति बेचने के लिए कोई समझौता नहीं किया था। दूसरी ओर उन्होंने उत्तरदाताओं संख्या एक व दो के साथ दिनांक 13.12.1975 को सम्पत्ति बेचने के लिए एक समझौता किया था, जिसका विक्रय विलेख दिनांक 18.04.1977 को निष्पादित हुआ।

ट्रायल कोर्ट द्वारा कई मुद्दें तय किए थे और ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलकर्त्ता दोनों ने वादी के पक्ष में सभी मुद्दों का जवाब दिया। वर्तमान प्रत्यर्थियों द्वारा दायर दूसरी अपील में, जो उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्त्ता थे, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वाद में अभिवचन प्रपत्र संख्या के साथ पठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963

की धारा 16(सी) की आवश्यकता पूरी नहीं करते है और फार्म नम्बर 47 व 18 सीपीसी की पहली अनुसूचि के परिशिष्ट 'ए' वादी को विशिष्ट निष्पादन के लिए डिक्री नहीं मिल सकती है। मूल प्रतिवादी संख्या एक के स्थान पर कानूनी उत्तराधिकारियों के रूप में अनुबंध को अभिलेख पर नहीं लाया गया था। उच्च न्यायालय ने उन मुद्दों के संबंध में निर्धारण के लिए प्रश्न तैयार किये थे, जिनका निर्णय ट्रायल कोर्ट द्वारा भी नहीं किया गया था। ट्रायल कोर्ट और पहली अपीलीय अदालत ने स्पष्ट रूप से निष्कर्ष दिया कि संबंधित समय पर विक्रय विलेख के पंजीकरण पर प्रतिबंध था इसलिए, केवल ब्रिक्री के समझौते को निष्पादित किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि उच्च न्यायलय ने पाया कि पारित डिक्री निष्पादन योग्य नहीं थी, क्योंकि प्रतिवादी संख्या एक की मृत्यु हो गई थी और कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था। उस सम्बन्ध में कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था और दूसरी अपील में कानून का कोई सवाल भी नहीं बनाया गया था।

अपील को अनुमति देते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

1.1 स्पष्टीकरण (ii) के साथ पठित विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 16(सी) के पीछे मूल सिद्धान्त यह है कि कोई भी व्यक्ति विनिर्दिष्ट का लाभ लेना चाहता है। अनुबन्ध के निष्पादन में यह स्पष्ट होना चाहिए कि विशिष्ट राहत के लिए हकदार होने के दौरान उसका आचरण दोषरहित रहा

है। यह प्रावधान एक व्यक्तिगत प्रतिबंध लगाता है। अदालत को राहत मांगने वाले व्यक्ति के आचरण के आधार पर राहत देनी है। यदि अभिवचन प्रकट करते हैं कि वादी का आचरण उसे शिकायत के अवलोकन पर राहत प्राप्त करने का अधिकार देता है, उसे राहत से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। {246-डी}

सम्मानीय न्यायिक दृष्टान्त अर्देशिर एच मामा बनाम फलोरा ससून एआईआर, पेज 205, प्रेमराज बनाम डीएलएफ हाऊसिंग और कन्स्ट्रक्शन (प्राइवेट) लिमिटेड व अन्य एआईआर (1968) सुप्रीम कोर्ट पेज 1355, सूर्यनारायण उपाध्याय बनाम रामस्वरूप पांडे और अन्य, (2005), 7 एसएससी पेज 534 का उल्लेख किया गया।

सम्मानीय न्यायिक दृष्टान्त सैय्यद दस्तगीर बनाम टी.आर.गोपालकृष्ण शेट्टी (1990) एस.एस.सी. पेज 337, मोतीलाल जैन बनाम रामदासी देवी (श्रीमती) व अन्य (2006) 6 एससीसी पेज 420 व लार्ॅड कैम्पबेल बनाम एम्बरगेट आदि और रेलवे कंपनी (1851) 117 पेज 1229

2.1 अपील का अधिकार मुकदमेबाजी से जुड़ा न तो प्राकृतिक है और न ही अंतनिर्हित अधिकार है। एक वास्तविक वैधानिक अधिकार होने के नाते, इसे प्रासंगिक समय पर लागू कानून के अनुसार विनियमित किया जाना चाहिए। धारा 100 सीपीसी में उल्लिखित शर्तों को दूसरी अपील जारी

रखने से पहले सख्ती से पूरा किया जाना चाहिए और किसी भी न्यायालय के पास उन आधारों को जोड़ने या बढ़ाने की शक्ति नहीं है। दूसरी अपील का निर्णय केवल न्यायसंगत आधार पर नहीं किया जा सकता। इस धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा तथ्यों के मध्यमवर्ती निष्कर्ष चाहे, कितने भी गलत क्यों न हो, को परेशान नहीं किया जा सकता है। कानून के सारगर्भित प्रश्न को तथ्य के सारभूत प्रश्न से अलग करना होगा। {248-बी-डी}

सर. चुन्नीलाल बनाम मेहता एंड सन्स लि बनाम सेंचुरी एसपीजी एंड एमएफजी, कंपनी लि. 1962 पूरक 3 एससीआर 549, पर भरोसा किया।

2.2 इसकी जाँच करना उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। जिन आधारों पर तथ्य की अंतिम न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाले गए थे, यह सच है कि निचली न्यायलय को विश्वसनीयता के संबंध में स्वीकार किए गए गवाह को सामान्य से असवीकार नहीं करने चाहिए, लेकिन हयाँ तक कि जहाँ निचली न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए गवाहों को खारिज कर दिया है, वही दूसरी अपील में हस्तक्षेप के लिए कोई आधार नहीं है। जब यह पाया जाता है कि अपीलीय अदालत ने ऐसा करने के लिए संतोषजनक कारण दिए है। ऐसे मामले में जहाँ परिस्थितियों के दिए गए समूह में दो निष्कर्ष संभव है, निचली न्यायालय द्वारा तैयार किया गया

एक निष्कर्ष दूसरी अपील में उच्च न्यायलय के लिए बाध्यकारी है। किसी अन्य दृष्टिकोण को अपनाने की अनुमति नही है। उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय की राय के लिए अपनी राय को तब तक प्रतिस्थापित नहीं कर सकता, जब तक कि यह नहीं पाया जाता है कि निचली न्यायालय द्वारा निकाले गये निष्कर्ष गलत थे और लागू कानून के अनिवार्य प्रावधानों या उसके द्वारा की गई घोषणाओं के आधार पर तय स्थिति के विपरीत थे। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई घोषणाओं का आधार या अस्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित था या बिना साक्ष्य के आया था। [248-सी-डी]

2.3 जहाँ कानूनी मुद्दे की पैरवी नहीं की गई है या किसी तथ्यात्मक प्रारूप के अभाव में पक्षों के बीच उठता हुआ पाया गया है, तो किसी वादी को दूसरी अपील में कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उस प्रश्न को उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। केवल तथ्यों, दस्तावेजी सबूतों या प्रविष्टियों के अर्थ और दस्तावेज की सामग्री की सराहना को कानून का एक बड़ा सवाल उठाने वाला नहीं माना जा सकता है। [249-सी-डी]

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णय, सिविल अपील संख्या 3465/2000

इलाहबाद उच्च न्यायालय का एस.ए.सं. 2452/1984 में अंतिम निर्णय व आदेश दिनांक 01.09.1999, से।

श्री आर.बी.मेहरोत्रा, कविन गलाती, सुश्री रश्मि सिंह और श्रीमती नंदिनी गौर, अधिवक्तागण, अपीलार्थी की ओर से।

श्री एच.साहू व श्री सी.एल. साहू, अधिवक्तागण, प्रत्यर्थीगण की ओर से।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति श्री अरिजीत पासायत द्वारा दिया गया था।

इस अपील में चुनौती इलाहाबाद उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए फैसले को दी गई है, जिसमें फैसले और डिक्री को उलट कर नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'सीपीसी') की धारा 100 के तहत दायर दूसरी अपील की अनुमति दी गई है। अपीलीय न्यायालय द्वारा पुष्टि के अनुसार ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित किया गया।

अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत तथ्यात्मक पृष्ठभूमि संक्षेप में इस प्रकार है:

दिनांक 13.12.1975 को 7,000/- रुपये की राशि के लिए मुकदमे की संपत्ति के संबंध में अपीलकर्ता, यहां और मुकदमे में महादेव प्रतिवादी नंबर 1 (मृतक के बाद से) के बीच बेचने का एक समझौता निष्पादित किया गया था। उक्त राशि में से रु. 5,000/- का भुगतान समझौते की तिथि पर बयाना राशि के रूप में किया गया था और शेष राशि बिक्री की तिथि पर देय थी। बिक्री का पंजीकरण नहीं किया जा सका क्योंकि माना जाता है कि संबंधित समय पर शहरी संपत्ति की बिक्री पर प्रतिबंध था।

बेचने का समझौता 13.12.1975 को हुआ था। प्रतिवादी नंबर 1 महादेव ने कथित तौर पर दिनांक 13.12.1975 को बेचने के समझौते के आधार पर उत्तरदाताओं 1 और 2 (मुकदमे में प्रतिवादी नंबर 2 और 3) के पक्ष में 6,000/- रुपये की बिक्री विलेख निष्पादित किया। 3.7.1978 को प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा अपीलकर्ता से बकाया किराए की मांग करते हुए एक नोटिस भेजा गया था। 3.1.1979 को अपीलकर्ता ने दिनांक 13.12.1975 के समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा दायर किया। अन्य बातों के साथ-साथ यह संकेत दिया गया कि प्रतिवादी संख्या 1 ने किसी न किसी बहाने से विक्रय विलेख के पंजीकरण को टाल दिया, 3.7.1978 को उसे पता चला कि महादेव ने प्रतिवादी संख्या के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया था। 1 और 2 और, इसलिए, मुकदमा 3.1.1979 को दायर किया गया था। इसके अलावा प्रतिवादी सं. 1 और 2 को महादेव द्वारा अपीलकर्ता के पक्ष में निष्पादित बिक्री समझौते की पूरी जानकारी थी, और इसके बावजूद प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ने बिक्री विलेख निष्पादित कर दिया। वादपत्र में विशेष रूप से कहा गया था कि वह विक्रय पत्र निष्पादित कराने के लिए पूरी तरह तैयार और इच्छुक थी। महादेव और प्रतिवादी 1 और 2 यानी प्रतिवादी 2 और 3 का लिखित बयान इस तथ्य पर था कि महादेव ने 13.12.1975 को वाद संपत्ति बेचने के लिए कोई समझौता नहीं किया था। दूसरी ओर, महादेव ने उत्तरदाताओं 1 और 2 के साथ दिनांक 18.12.1973 को संपत्ति बेचने के लिए एक समझौता किया था, जिसका

समापन दिनांक 18.4.1977 को बिक्री विलेख के रूप में हुआ। महादेव ने आगे आरोप लगाया कि बेचने का समझौता एक जाली दस्तावेज था और इसमें न तो हस्ताक्षर थे और न ही एल.टी.आई. महादेव और प्रतिवादी संख्या 2 और 3 यानी प्रतिवादी 1 और 2 को 13.12.1975 को निष्पादित किए गए कथित बिक्री समझौते के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। उत्तरदाताओं 1 और 2 ने आगे यह रुख अपनाया कि बिक्री विलेख दिनांक 18.4.1977 को महादेव द्वारा निष्पादित किया गया था और वादी अपीलकर्ता की पूरी जानकारी के साथ जो किरायेदार था। महादेव कभी भी हिंदी में हस्ताक्षर नहीं करते थे और महाजनी में हस्ताक्षर करते थे।

ट्रायल कोर्ट द्वारा निम्नलिखित मुद्दे तय किए गए:

1.(ए) क्या प्रतिवादी नंबर 1 महादेव ने वादी के पक्ष में 13.12.1975 को वादी के पक्ष में 7,000/- रुपये में घर की बिक्री के लिए एक समझौता पत्र निष्पादित किया था?

(बी) क्या प्रतिवादी महादेव ने उस तारीख को बयाना राशि के रूप में 5,000/- रुपये स्वीकार किए और उसके बाद एक समझौता पत्र निष्पादित किया?

2. क्या महादेव द्वारा विवादित मकान के संबंध में दिनांक 18.4.1977 को रामेश्वर दास एवं जमुना प्रसाद के पक्ष में निष्पादित विक्रय पत्र अमान्य है?

3. क्या प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने मूल्य के लिए और बिना सूचना के वास्तविक खरीद की है?

4 ए क्या सूट का मूल्य कम है?

4 बी क्या भुगतान किया गया न्यायालय शुल्क अपर्याप्त है?

5. क्या मुकदमा पारस्परिकता के सिद्धांत द्वारा वर्जित है?

6. क्या वादी का विवादित घर पर किरायेदार के रूप में कब्ज़ा है या उसने उक्त अनुबंध विलेख का आंशिक निष्पादन किया है?

7. वादी किस राहत का हकदार है, यदि कोई हो?

ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलकर्ता अदालत दोनों ने वादी के पक्ष में सभी सवालों के जवाब दिए।

दूसरी अपील में वर्तमान उत्तरदाताओं, जो उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता थे, द्वारा निम्नलिखित प्रश्न उठाए गए थे:

1. क्या यह सुझाव देने के लिए कोई सबूत नहीं था कि वादी ने समझौते पर जिस अंगूठे के निशान पर भरोसा किया था वह महादेव का था?

2. क्या मुकदमा समय से वर्जित था?

3. क्या अपीलकर्ता बिना किसी सूचना के मूल्य के वास्तविक खरीदार हैं?

4. क्या विक्रय विलेख अपीलकर्ता के पक्ष में महादेव द्वारा वैध रूप से निष्पादित किया गया था?

उच्च न्यायालय ने माना कि वादपत्र में दी गई दलीलें विशिष्ट राहत अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 16 (सी) की आवश्यकता को पूरा नहीं करती हैं, जो परिशिष्ट ए के फॉर्म संख्या 47 और 48 के साथ पढ़ी जाती हैं। सीपीसी की पहली अनुसूची. यह माना गया कि प्रतिवादी 2 और 3 बिना किसी सूचना के मूल्य के वास्तविक खरीदार थे। नीचे की अदालतों द्वारा यह मानने के लिए दिए गए कारण कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को वादी के समझौते के बारे में जानकारी थी, काल्पनिक कारण थे और वे स्वीकार्य नहीं थे। वादी को अनुबंध के विशिष्ट पालन के लिए डिक्री नहीं मिल सकती क्योंकि मृतक प्रतिवादी नंबर 1 के स्थान पर कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था। ट्रायल कोर्ट ने मुद्दा संख्या 7 से निपटते समय जैसा कि ऊपर उल्लेख किया है, इस प्रकार दर्ज किया गया है:

> "मुकदमा नंबर 1 और 2 में वादी ने अपने बयान की पुष्टि की है कि वह सभी प्रतिवादियों द्वारा अपने पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित कराना चाहती है। प्रतिवादी नंबर 1 महादेव की बिना किसी उत्तराधिकारी के मृत्यु हो गई थी और इस आधार पर कोई विक्रय पत्र नहीं हो सकता है उसके द्वारा

निष्पादित किया जाएगा। जहां तक प्रतिवादी क्रमांक 2 और 3 का सवाल है, महादेव द्वारा निष्पादित विक्रय पत्र शून्य पाया गया। इसलिए वे भी विक्रय पत्र निष्पादित नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थिति में शेष 2000/- रुपये प्राप्त करने के बाद केवल न्यायालय ही विक्रय विलेख निष्पादित करने का आदेश दे सकता है।"

प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा पुष्टि की गई ट्रायल कोर्ट के उपरोक्त निष्कर्षों पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया है, और तदनुसार अपील की अनुमति दी गई थी।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क प्रस्तुत किया कि वादपत्र में तत्परता और इच्छा के बारे में विशिष्ट कथन दिए गए थे। अंक संख्या 6 का उत्तर देते हुए ट्रायल कोर्ट ने कहा था कि दिनांक 18.12.1973 के कथित समझौते का निष्पादन साबित नहीं हुआ था। प्रतिवादी नंबर 1 ने पंजीकरण पर प्रतिबंध के बारे में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था। लिखित बयान में महादेव, प्रतिवादी सं. 1 ने भी प्रतिबंध के बारे में स्वीकार किया और पैराग्राफ 6 में दिनांक 19.7.1977 के विक्रय पत्र के बारे में बताया था। प्रथम अपीलीय अदालत ने कहा कि इसमें कोई विवाद नहीं है कि संबंधित अवधि के दौरान विक्रय पत्र के पंजीकरण पर रोक थी। चूँकि पंजीकरण पर रोक थी इसलिए विक्रय अनुबंध निष्पादित किया गया। उच्च न्यायालय ने

माना कि उसके द्वारा तैयार किए गए प्रश्न संख्या 3 का उत्तर देने में समय की बाधा थी। ध्यान देने वाली बात यह है कि मुकदमे में ऐसा कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था। किसी भी स्थिति में, परिसीमा अधिनियम, 1963 (संक्षेप में 'परिसीमा अधिनियम') के अनुच्छेद 54 के अवलोकन से पता चलता है कि मुकदमा समय के भीतर था। अधिनियम की धारा 16 (सी) के संदर्भ में तत्परता और इच्छा के संबंध में कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था। किसी भी घटना में वादी में स्पष्ट बयान दिए गए थे और इस संबंध में विशेष रूप से साक्ष्य भी दिए गए थे। उच्च न्यायालय का मानना था कि यदि डिक्री दी भी गई तो भी यह निष्पादन योग्य नहीं है क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 की मृत्यु हो गई थी और कोई कानूनी प्रतिनिधि रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था। ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्षों को प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा समर्थित किया गया था, प्रतिवादी नंबर 2 और 3 वास्तविक खरीदार नहीं थे, उच्च न्यायालय द्वारा दूसरी अपील में खारिज कर दिया गया था जो स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है। ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलीय अदालत ने स्पष्ट रूप से मिलीभगत के बारे में एक निष्कर्ष दर्ज किया था जिसे बिना किसी सामग्री के रद्द कर दिया गया है।

जबकि प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने कहा है कि ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलीय अदालत के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से गलत थे और इसलिए, उच्च न्यायालय ने मामले में हस्तक्षेप करना उचित ही था।

यह देखा जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय ने उन मुद्दों के संबंध में निर्धारण के लिए प्रश्न तैयार किए थे जिनका निर्णय ट्रायल कोर्ट द्वारा भी नहीं किया गया था। इस बात का कोई मुद्दा नहीं है कि मुकदमा समय से बाधित था या नहीं, ट्रायल कोर्ट द्वारा तय किया गया था। अन्यथा भी अनुच्छेद 54 के संदर्भ में सीमा का प्रारंभिक बिंदु उस तारीख से तीन वर्ष है जब एक तारीख तय की जाती है और उदाहरण के लिए मामले में कोई तारीख तय नहीं की गई थी और इसके विपरीत समझौते के निष्पादन से इनकार कर दिया गया था। उच्च न्यायालय ऐसे आगे बढ़ा जैसे कि परिसीमा की अवधि समझौते की कथित तिथि दिनांक 3.12.1975 से शुरू हुई हो। प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के पक्ष में बिक्री विलेख के निष्पादन के बारे में नोटिस जुलाई, 1978 में प्राप्त हुआ था और मुकदमा 3.1.1979 को दायर किया गया था। अनुच्छेद 54 इस प्रकार है:

मुकदमे का विवरण परिसीमा की अवधि वह समय जब से अवधि शुरू होती है किसी अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए तीन वर्ष निष्पादन के लिए निर्धारित तिथि, या, यदि ऐसी कोई तिथि निश्चित नहीं है, जब वादी को नोटिस मिलता है कि निष्पादन से इनकार कर दिया गया है। इसलिए, मुकदमा स्पष्ट रूप से समय के भीतर था।

इसके अलावा अधिनियम की धारा 16 (सी) की आवश्यकता की कथित गैर-पूर्ति के संबंध में कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था। अजीब बात है

कि उच्च न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्यात्मक निष्कर्षों को खारिज कर दिया और कहा कि अधिनियम की धारा 16 (सी) की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया गया था।

धारा 16(सी) को स्पष्टीकरण के साथ उद्धृत करने की आवश्यकता है। वही इस प्रकार पढ़ता है:

> "16. रोक - अनुतोष के लिए वैयक्तिक वर्जन -:
>
> (ए) .....
>
> (बी) .....
>
> (सी) जो यह कहने और साबित करने में विफल रहता है कि उसने अनुबंध की आवश्यक शर्तों का पालन किया है या करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक रहा है, जिन्हें उसके द्वारा पूरा किया जाना है, उन शर्तों के अलावा जिनके प्रदर्शन को रोका या माफ कर दिया गया है प्रतिवादी।
>
> स्पष्टीकरण- खंड (सी) के प्रयोजन के लिए-
>
> (i) जहां किसी अनुबंध में पैसे का भुगतान शामिल है, वादी के लिए वास्तव में प्रतिवादी को निविदा देना या अदालत में कोई पैसा जमा करना आवश्यक नहीं है, सिवाय इसके कि जब अदालत ने ऐसा निर्देश दिया हो;

(ii) वादी को अनुबंध के वास्तविक निर्माण के अनुसार उसके निष्पादन, या निष्पादन के लिए तत्परता और इच्छा का ध्यान रखना चाहिए।"

अर्देशिर एच. मामा बनाम फ्लोरा सैसून, एआईआर, (1928) पेज 208, प्रिवी काउंसिल ने देखा कि जहां पीड़ित पक्ष ने अनुबंध की जड़ तक जाकर उल्लंघन के लिए कानून में मुकदमा दायर किया, तो उसने अनुबंध को स्वयं समाप्त मानने और दायित्वों से मुक्त मानने का फैसला किया। उनके द्वारा आगे किसी प्रदर्शन पर न तो विचार किया गया और न ही उसे प्रस्तुत करना पड़ा। दूसरी ओर, विशिष्ट निष्पादन के लिए एक मुकदमे में, उसने अनुबंध को अभी भी अस्तित्व में मानने के लिए न्यायालय से अपेक्षा की थी। उस मुकदमे में उसके पास आरोप लगाने के लिए था, और यदि तथ्य का पता लगाया गया था, तो उसे अपनी ओर से अनुबंध को निष्पादित करने के लिए अनुबंध की तारीख से सुनवाई के समय तक निरंतर तत्परता और इच्छा साबित करने की आवश्यकता थी। उस दावे को पूरा करने में विफलता अपने साथ लाती है और मुकदमे को अपरिहार्य रूप से खारिज कर देती है। प्रेम राज बनाम डी.एल.एफ.हाउसिंग एंड कंस्ट्रक्शन (प्राइवेट) लिमिटेड और अन्य, एआईआर (1968) सुप्रीम कोर्ट पेज 1355 के मामले में टिप्पणियों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था।

अधिनियम की धारा 16(सी) का अनुपालन करने के लिए पूरी की जाने वाली आवश्यकताओं को इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में रेखांकित किया गया है। विभिन्न निर्णयों पर विचार करने से पहले तथ्यात्मक स्थिति स्पष्ट करना आवश्यक है। बिक्री के लिए समझौता 15.2.1978 को निष्पादित किया गया था और जिस अवधि के दौरान बिक्री पूरी की जानी थी वह छह महीने बताई गई थी। निर्विवाद रूप से, छह महीने की अवधि समाप्त होने के तुरंत बाद वकील का नोटिस दिया गया जिसमें वर्तमान अपीलकर्ता को विक्रय पत्र निष्पादित करने के लिए कहा गया। वादपत्र में यह भी कहा गया है कि वादी ने प्रतिवादी से कई बार मुलाकात की और उससे विक्रय पत्र निष्पादित करने का अनुरोध किया। अपनी ओर से निष्क्रियता पाए जाने पर सितंबर, 1978 में मुकदमा दायर किया गया। इस तथ्यात्मक स्थिति को वादपत्र में ही उजागर किया गया है। वाद-पत्र में दिए गए कथनों में परिलक्षित तथ्यात्मक स्थिति को देखने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि वाद-पत्र में आवश्यक तथ्य शामिल हैं, जो वादी की तत्परता और इच्छा का अनुमान लगाते हैं। वादपत्र का पैरा 3 इंगित करता है कि वादी आवश्यक प्रतिफल अदा करने के बाद विक्रय पत्र तैयार कराने के लिए हमेशा तैयार था। वादपत्र के पैरा 4 में वकील के उस नोटिस का संदर्भ दिया गया है जिसमें प्रतिवादी से विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए कहा गया है। उक्त पैराग्राफ में यह भी बताया गया है कि वकील के नोटिस जारी होने के बाद वादी प्रतिवादी से

कैसे मिला। पैरा 5 में यह कहा गया है कि प्रतिवादी शेष राशि प्राप्त करने पर विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए बाध्य है और वादी प्रतिवादी द्वारा दस्तावेज़ निष्पादित कराने का हकदार था। यह भी विवाद में नहीं है कि सहमत प्रतिफल की शेष राशि मुकदमा दायर करने के साथ ही अदालत में जमा कर दी गई थी। धारा 16(सी) की आवश्यकता की जांच करते समय इस न्यायालय ने सैयद दस्तगीर बनाम टी.आर. गोपालकृष्ण शेट्टी (1999 (6) एससीसी 337) ने इस प्रकार उल्लेख किया:

> "तो उठाए गए मुद्दे का पूरा पहलू यह है कि विशेष रूप से धारा 16 (सी) के संदर्भ में एक याचिका को कैसे समझा जाए और वादी को अपनी याचिका के संदर्भ में किन दायित्वों का पालन करना होगा और क्या वादी की याचिका का पालन किया जा सकता है उपरोक्त धारा की आवश्यकता के अनुरूप नहीं माना जा सकता है, या क्या इस धारा में विशिष्ट शब्दों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता है जिसे उसने पूरा किया है या हमेशा तैयार है और अनुबंध के अपने हिस्से को निष्पादित करने के लिए तैयार है। किसी भी दलील में एक दलील का अर्थ लगाने में, अदालतों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक याचिका कला और विज्ञान की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि राहत के लिए किसी के मामले के तथ्य और कानून को शब्दों के माध्यम से

रखने की अभिव्यक्ति है। ऐसी अभिव्यक्ति स्पष्ट, सटीक, कभी-कभी अस्पष्ट हो सकती है लेकिन फिर भी यह हो सकती है पूरी दलील को पढ़कर ही वह जो कहना चाहता है उसे इकट्ठा कर लेता है, यह याचिका का मसौदा तैयार करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है। भारत में अधिकांश दलीलों का मसौदा वकील द्वारा तैयार किया जाता है, इसलिए दलीलों में उपरोक्त अंतर है जो अनिवार्य रूप से एक से दूसरे में भिन्न होता है। इस प्रकार, किसी दलील के पीछे की सच्ची भावना को जानने के लिए इसे समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए। यह किसी को क़ानून के तहत आवश्यक अपने दायित्वों को पूरा करने से विचलित नहीं करता है। लेकिन यह जांचने के लिए कि क्या उसने अपने दायित्वों का पालन किया है, किसी को याचिका का सार और सार देखना होगा। जहां किसी क़ानून के लिए किसी तथ्य को प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है तो उसे प्रस्तुत करना किसी भी रूप में हो सकता है। एक ही दलील को अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग शब्दों के माध्यम से कहा जा सकता है; फिर इसे केवल किसी विशेष नामकरण या शब्द तक ही कैसे सीमित किया जा सकता है। जब तक किसी क़ानून के लिए विशेष रूप से किसी विशेष रूप में

याचिका की आवश्यकता नहीं होती, यह किसी भी रूप में हो सकती है। ऐसी दलील देने के लिए किसी विशिष्ट वाक्यांशविज्ञान या भाषा की आवश्यकता नहीं है। धारा 16(सी) में भाषा के लिए किसी विशिष्ट वाक्यांशविज्ञान की आवश्यकता नहीं है, बल्कि केवल यह है कि वादी को यह कहना चाहिए कि उसने अनुबंध के अपने हिस्से का पालन किया है या हमेशा से रहा है और करने को तैयार है। इसलिए "तत्परता और इच्छा" का अनुपालन भावना और सार में होना चाहिए न कि अक्षरशः और रूप में। इसलिए किसी क़ानून के सटीक शब्दों के यांत्रिक उत्पादन पर ज़ोर देना सार के बजाय स्वरूप पर ज़ोर देना है। इसलिए यदि पहले से ही अनुरोध किया गया हो तो रूप की अनुपस्थिति किसी सार को भंग नहीं कर सकती है।"

फिर मोतीलाल जैन बनाम रामदासी देवी (श्रीमती) और अन्य (2000 (6) एससीसी 420) में इसे इस प्रकार नोट किया गया था:

अन्य तर्क जो उच्च न्यायालय के पक्ष में पाया गया, वह यह है कि वादी के कथन यह नहीं दर्शाते हैं कि वादी किसी भी दर पर अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक था। इसे साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है। श्री चौधरी ने वर्गीज़ मामले

((1969) 2 एससीसी 539) के फैसले पर भरोसा करते हुए उस विवाद को उजागर किया। उस मामले में, वादी ने वाद संपत्ति की बिक्री के लिए एक मौखिक अनुबंध का अनुरोध किया। प्रतिवादी ने कथित मौखिक समझौते से इनकार किया और एक अलग समझौते की वकालत की जिसके संबंध में वादी ने न तो अपनी याचिका में संशोधन किया और न ही बाद में याचिका दायर की और यह उस संदर्भ में था कि इस न्यायालय ने बताया कि विशिष्ट निष्पादन में दलील फॉर्म 47 और 48 के अनुरूप होनी चाहिए। सिविल प्रक्रिया संहिता की पहली अनुसूची की। अब्दुल खादर ((1989) 4 एससीसी पेज 313 में वाले मामले में उस दृष्टिकोण का पालन किया गया था।

> "हालाँकि, चंडियोक मामले ((1970) 3 एससीसी 140) में इस न्यायालय द्वारा एक अलग टिप्पणी की गई थी। उस मामले में 'ए' 'आर' से एक लीजहोल्ड प्लॉट खरीदने के लिए सहमत हुआ। 'आर' के पास सरकार से न तो जमीन का पट्टा था और न ही उसका कब्जा था। हालाँकि, 'आर' को बिक्री के समझौते के अनुसार बयाना राशि प्राप्त हुई, जिसमें प्रावधान था कि शेष राशि का भुगतान पंजीकृत बिक्री विलेख के निष्पादन के समय एक महीने के भीतर किया जाएगा। समझौते के तहत 'आर' को लीजहोल्ड प्लॉट के हस्तांतरण से पहले सरकार से अनुमति और मंजूरी प्राप्त

करने का दायित्व था। 'आर' ने सरकार से मंजूरी के लिए आवेदन करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। 'ए' ने बिक्री के अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए मुकदमा दायर किया। 'आर' का एक तर्क यह था कि 'ए' अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था। इस न्यायालय ने कहा कि तत्परता और इच्छा को एक स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला के रूप में नहीं माना जा सकता है और इसे संबंधित पक्ष के इरादे और आचरण से संबंधित संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों से निर्धारित किया जाना चाहिए। यह दिखाने के लिए किसी भी सामग्री के अभाव में यह माना गया कि 'ए' किसी भी स्तर पर अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए तैयार और इच्छुक नहीं था या उसके पास भुगतान के लिए आवश्यक धन नहीं था जब बिक्री विलेख निष्पादित किया जाएगा। मंजूरी प्राप्त हो गई थी, 'ए' अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए डिक्री का हकदार था। सैयद दस्तगीर मामले ((1999) 6 एससीसी 337) में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा उस निर्णय पर भरोसा किया गया था, जिसमें यह माना गया था कि किसी भी दलील में एक याचिका का अर्थ लगाते समय, अदालतों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक याचिका

एक याचिका नहीं है। कला और विज्ञान की अभिव्यक्ति, लेकिन राहत के लिए किसी के मामले के तथ्य और कानून को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना। यह बताया गया है कि भारत में अधिकांश दलीलें वकील द्वारा तैयार की जाती हैं और इसलिए वे अनिवार्य रूप से एक से दूसरे में भिन्न होती हैं; इस प्रकार, किसी याचिका के पीछे की सच्ची भावना को जानने के लिए इसे समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और यह जांचने के लिए कि क्या वादी ने अपने दायित्वों का पालन किया है, किसी को याचिका का सार और सार देखना होगा। यह देखा गया: "जब तक किसी क़ानून में विशेष रूप से किसी विशेष रूप में याचिका की आवश्यकता नहीं होती है, तब तक यह किसी भी रूप में हो सकती है। ऐसी याचिका लेने के लिए किसी विशिष्ट वाक्यांशविज्ञान या भाषा की आवश्यकता नहीं है। विशिष्ट की धारा 16 (सी) में भाषा राहत अधिनियम, 1963 के लिए किसी विशिष्ट वाक्यांशविज्ञान की आवश्यकता नहीं है, बल्कि केवल यह है कि वादी को यह कहना चाहिए कि उसने अनुबंध के अपने हिस्से का पालन किया है या हमेशा रहा है और करने को तैयार है। इसलिए 'तत्परता और इच्छा' का

अनुपालन आत्मा में होना चाहिए और पदार्थ और अक्षर और रूप में नहीं।"

"इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वादी में तत्परता और इच्छा का अनुमान कोई गणितीय सूत्र नहीं है जो केवल विशिष्ट शब्दों में होना चाहिए। यदि समग्र रूप से वादपत्र में दिए गए कथन स्पष्ट रूप से अनुबंध के तहत दायित्वों के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए वादी की तत्परता और इच्छा को इंगित करते हैं, जो कि मुकदमे की विषय-वस्तु है, तो यह तथ्य कि वे अलग-अलग शब्दों में लिखे गए हैं, उनके खिलाफ कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। बिक्री के अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमे में वादी की तत्परता और इच्छा।"

कॉर्क बनाम एम्बरगेट आदि और रेलवे कंपनी (1851) 117 ईआर 1229 में लॉर्ड कैंपबेल ने देखा कि सामान्य ज्ञान में तत्परता और इच्छा के ऐसे अनुमान का अर्थ यह होना चाहिए कि अनुबंध का पूरा न होना दोषी नहीं था। वादी, और यदि प्रतिवादी ने इसका त्याग नहीं किया होता तो वे इसका निपटारा कर चुके थे और इसे पूरा करने में सक्षम थे।

स्पष्टीकरण (ii) के साथ पढ़ी गई धारा 16(सी) के पीछे मूल सिद्धांत यह है कि अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन का लाभ चाहने वाले किसी भी व्यक्ति को यह दिखाना होगा कि विशिष्ट राहत का हकदार बनाने के दौरान उसका आचरण दोषरहित रहा है। प्रावधान एक व्यक्तिगत रोक लगाता है। न्यायालय को राहत चाहने वाले व्यक्ति के आचरण के आधार पर राहत देनी है। यदि दलीलों से पता चलता है कि वादी का आचरण उसे वादपत्र के अवलोकन पर राहत पाने का हकदार बनाता है तो उसे राहत से इनकार नहीं किया जाना चाहिए।

अधिनियम की धारा 16 (सी) वादी को वादपत्र में दावा करने और साक्ष्य के रूप में इस तथ्य को स्थापित करने के लिए बाध्य करती है कि वह अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए हमेशा तैयार और इच्छुक रहा है। लगभग समान तथ्य स्थिति पर विचार करने पर इस न्यायालय द्वारा सूर्य नारायण उपाध्याय बनाम राम रूप पांडे और अन्य एआइआर (1994) एससी पेज 105 में यह व्यवस्था दी गई थी कि वादी ने अपनी याचिका को प्रमाणित किया है।

इन पहलुओं को एनिग्लेस योहन्नान बनाम रामलता और अन्य (2005)7 एससीसी 534) में उजागर किया गया था।

ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलीय अदालत ने स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किए कि संबंधित समय पर बिक्री विलेख के पंजीकरण पर प्रतिबंध था और

इसलिए, केवल बिक्री का समझौता निष्पादित किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि उच्च न्यायालय ने पाया कि पारित डिक्री निष्पादन योग्य नहीं थी क्योंकि प्रतिवादी नंबर 1 की मृत्यु हो गई थी और कानूनी उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था। उस संबंध में कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था और यहां तक कि दूसरी अपील में कानून का कोई प्रश्न भी तैयार नहीं किया गया था। ट्रायल कोर्ट और प्रथम अपीलीय अदालत ने इस तथ्य के निष्कर्षों को दर्ज किया कि प्रतिवादी नंबर 1 और प्रतिवादी नंबर 2 और 3 के बीच मिलीभगत थी। यह इतना तथ्यात्मक निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि प्रतिवादी नंबर 2 और वादी 3 को समझौते के बारे में जानकारी थी।

प्रथम अपीलीय अदालत ने इस प्रश्न की विस्तृत जांच की कि क्या प्रतिवादी 2 और 3 को ज्ञान था। यह नोट किया गया कि यह दलील कि प्रतिवादी 2 और 3 द्वारा आंशिक भुगतान किया गया था, स्पष्ट रूप से प्रतिवादी संख्या 1 के साक्ष्य के विपरीत था। तथ्यात्मक निष्कर्षों में हस्तक्षेप का दायरा काफी सीमित है। जब तक तथ्यात्मक निष्कर्ष विकृत न हो, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के विपरीत न हो, व्यावहारिक रूप से हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है।

1976 के संशोधित अधिनियम 104 द्वारा संशोधन के बावजूद, धारा 100 सीपीसी को विभिन्न उच्च न्यायालयों के कुछ न्यायाधीशों द्वारा

उदारतापूर्वक समझा और लागू किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप कानून और उसके पीछे के उद्देश्य में किए गए कठोर परिवर्तन विफल हो गए हैं। संशोधित अधिनियम विभिन्न विधि आयोग की रिपोर्टों के आधार पर पेश किया गया था, जिसमें सीपीसी में उचित प्रावधान बनाने की सिफारिश की गई थी, जिसका उद्देश्य मुकदमेबाजी को कम करना, प्राकृतिक न्याय के स्वीकृत सिद्धांतों के अनुसार वादी को निष्पक्ष सुनवाई देना और मामलों के निपटान में तेजी लाना था। सिविल मुकदमे और कार्यवाही ताकि न्याय में देरी न हो, जटिल प्रक्रिया से बचा जा सके, समुदाय के गरीब वर्गों के लिए उचित सौदा सुनिश्चित किया जा सके और दूसरी अपील को केवल ऐसे प्रश्नों पर सीमित किया जा सके जो अदालतों द्वारा कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न होने के लिए प्रमाणित हैं।

संशोधन के बाद दूसरी अपील केवल तभी दायर की जा सकती है जब मामले में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल हो। अपील के ज्ञापन में शामिल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का स्पष्ट रूप से उल्लेख होना चाहिए और उच्च न्यायालय ऐसे प्रश्न के अस्तित्व के संबंध में खुद को संतुष्ट करने के लिए बाध्य है। संतुष्ट होने पर, उच्च न्यायालय को मामले में शामिल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने होंगे। इस प्रकार तैयार किए गए प्रश्न पर अपील की सुनवाई आवश्यक है। हालाँकि, अपील की सुनवाई के समय प्रतिवादी को यह तर्क देने का अधिकार है कि अदालत में मामले में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं था। धारा का प्रावधान

कानून के एक महत्वपूर्ण बिंदु पर अपील सुनने के लिए उच्च न्यायालय की शक्तियों को स्वीकार करता है, हालांकि इसे यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तैयार नहीं किया गया है कि जहां ऐसा प्रश्न तैयार नहीं किया गया है, वहां वादी के साथ कोई अन्याय नहीं होगा। प्रवेश का समय या तो गलती से या असावधानी से। यह बार-बार देखा गया है कि अपील के ज्ञापन में कानून के ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न के बयान पर जोर दिए बिना और प्रवेश के समय इसे तैयार किए बिना, उच्च न्यायालय नोटिस जारी कर रहे हैं और आमतौर पर दूसरी अपील का पालन किए बिना निर्णय ले रहे हैं। सीपीसी की धारा 100 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार। कई मामलों में यह पाया गया है कि कानून के प्रश्न और कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न के बीच अंतर करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है। इस धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रथम अपीलीय के तथ्य के निष्कर्ष अदालत में गड़बड़ी पाई गई है। यह ध्यान में रखना होगा कि अपील का अधिकार मुकदमेबाजी से जुड़ा न तो प्राकृतिक और न ही अंतर्निहित अधिकार है। एक वास्तविक वैधानिक अधिकार होने के नाते, इसे प्रासंगिक समय पर लागू कानून के अनुसार विनियमित किया जाना चाहिए। दूसरी अपील जारी रखने से पहले धारा में उल्लिखित शर्तों को सख्ती से पूरा किया जाना चाहिए और किसी भी अदालत के पास उन आधारों को जोड़ने या बढ़ाने की शक्ति नहीं है। दूसरी अपील का निर्णय केवल न्यायसंगत आधार पर नहीं किया जा सकता। इस धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च

न्यायालय द्वारा तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष चाहे कितने भी गलत क्यों न हों, को परेशान नहीं किया जा सकता है। कानून के सारगर्भित प्रश्न को तथ्य के सारभूत प्रश्न से अलग करना होगा। यह न्यायालय सर चुन्नीलाल बनाम मेहता एंड संस लिमिटेड बनाम सेंचुरी एसपीजी में। एंड एमएफजी. कंपनी लिमिटेड (1962 सप्लिमेंट (3) एससीआर 549) ने माना कि: "यह निर्धारित करने के लिए उचित परीक्षण कि क्या मामले में उठाया गया कानून का कोई प्रश्न पर्याप्त है, हमारी राय में, यह सामान्य सार्वजनिक महत्व का है या नहीं या क्या यह सीधे और पर्याप्त रूप से पार्टियों के अधिकारों को प्रभावित करता है और यदि हां, तो क्या यह या तो इस अर्थ में एक खुला प्रश्न है कि इसका अंतिम रूप से इस न्यायालय या प्रिवी काउंसिल या संघीय न्यायालय द्वारा निपटारा नहीं किया गया है या यह कठिनाई से मुक्त नहीं है या वैकल्पिक विचारों पर चर्चा की मांग करता है। यदि प्रश्न उच्चतम न्यायालय द्वारा तय किया गया है या प्रश्न निर्धारित करने में लागू होने वाले सामान्य सिद्धांत अच्छी तरह से तय किए गए हैं और उन सिद्धांतों को लागू करने का केवल एक प्रश्न है या उठाया गया तर्क स्पष्ट रूप से बेतुका है यह प्रश्न क़ानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं होगा।

अंतिम तथ्य न्यायालय द्वारा जिन आधारों पर निष्कर्ष निकाले गए थे, उनकी जांच करना उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। यह सच है कि निचली अपीलीय अदालत को आमतौर पर विश्वसनीयता के संबंध में ट्रायल कोर्ट द्वारा स्वीकार किए गए गवाहों को खारिज नहीं करना

चाहिए, लेकिन यहां तक कि जहां उसने ट्रायल कोर्ट द्वारा स्वीकार किए गए गवाहों को खारिज कर दिया है, वहीं दूसरी अपील में हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं है, जब ऐसा हो पाया गया कि अपीलीय अदालत ने ऐसा करने के लिए संतोषजनक कारण बताए हैं। ऐसे मामले में जहां परिस्थितियों के एक सेट से दो निष्कर्ष संभव हैं। निचली अपीलीय अदालत द्वारा निकाली गई एक अपील दूसरी अपील में उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी है। कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं है। उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय अदालत की राय के स्थान पर अपनी राय नहीं रख सकता, जब तक कि यह नहीं पाया जाता कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा निकाले गए निष्कर्ष गलत थे और लागू कानून के अनिवार्य प्रावधानों या उसके द्वारा की गई घोषणाओं के आधार पर तय स्थिति के विपरीत थे। सर्वोच्च न्यायालय, या अस्वीकार्य साक्ष्य पर आधारित था या बिना साक्ष्य के पहुंचा था।

यदि कानून के प्रश्न को एक सारगर्भित प्रश्न कहा जाता है, तो संबंधित उच्च न्यायालय की एक बड़ी पीठ या प्रिवी काउंसिल या संघीय न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही निर्णय लिया जा चुका है, तो मामले के तथ्यों पर इसका केवल गलत अनुप्रयोग नहीं होगा। इसे कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न कहा जा सकता है। जहां कानूनी मुद्दे की पैरवी नहीं की गई है या किसी तथ्यात्मक प्रारूप के अभाव में पक्षों के बीच उठता हुआ पाया गया है, तो किसी वादी को दूसरी अपील में कानून

के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उस प्रश्न को उठाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। केवल तथ्यों, दस्तावेजी सबूतों या प्रविष्टियों के अर्थ और दस्तावेज़ की सामग्री की सराहना को कानून का एक बड़ा सवाल उठाने वाला नहीं माना जा सकता है। लेकिन जहां यह पाया जाता है कि पहली अपीलीय अदालत ने उस क्षेत्राधिकार को मान लिया है जो उसमें निहित नहीं था, तो इसे कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न मानते हुए दूसरी अपील में फैसला सुनाया जा सकता है। जहां पहली अपीलीय अदालत को न्यायिक तरीके से अपने विवेक का प्रयोग करते हुए दिखाया गया है, इसे दूसरी अपील में हस्तक्षेप की आवश्यकता वाले कानून या प्रक्रिया की त्रुटि नहीं कहा जा सकता है। भारतीय रिज़र्व बैंक बनाम रामकृष्ण गोविंद मोरे (1976 1 एससीसी 803) में इस न्यायालय ने माना कि क्या ट्रायल कोर्ट को अपने अधिकार क्षेत्र का अलग ढंग से प्रयोग नहीं करना चाहिए था, यह हस्तक्षेप को उचित ठहराने वाले कानून का सवाल नहीं है।

उपरोक्त स्थिति कोंडीबा दगडु कदम बनाम सावित्रीबाई सोपान गुजर और अन्य (1999 (3) एससीसी 722) में नोट की गई थी। किसी भी कोण से देखें तो उच्च न्यायालय का विवादित आदेश बचाव योग्य नहीं है और उसे खारिज किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है. प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा पुष्टि की गई ट्रायल कोर्ट के फैसले और डिक्री को बहाल किया जाता है। कोई लागत नहीं।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी राजन खेत्री (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।